

बिज़नेस स्टैंडर्ड

स्वच्छ रखने हों शहर तो कचरा फैलाने पर लगाना होगा कर

जमीनी हकीकत

सुनीता नारायण

हम जानते हैं कि हमारे समक्ष कचरे की एक गंभीर समस्या मौजूद है। मगर एक बात हम अच्छी तरह नहीं जानते कि कचरा निपटान के लिए सही तकनीक तलाशना समस्या नहीं है। समस्या उस तकनीक को ऐसे तंत्र के साथ जोड़ने से जुड़ी है, जिसमें घरेलू स्तर पर पृथक्करण हो जाए ताकि कचरा जमीन पर न फैले और उसे शोधित कर उसका पुनः उपयोग किया जा सके।

एक बात स्पष्ट है कि अगर कचरे को पृथक्कृत न किया जाए तो ऊर्जा या किसी और पहलू से उससे कोई फायदा नहीं निकाला जा सकता। मगर इसी मोर्चे पर हमारा कचरा प्रबंधन तंत्र कुछ पीछे रह जाता है। स्थानीय निकाय ठोस कचरा (एमएसडब्ल्यू) नियम 2015 के अनुसार स्रोत स्थल पर ही कचरे के पृथक्करण की जिम्मेदारी शहरी स्थानीय निकाय संस्था की है। इसका अर्थ यही होगा कि घरेलू स्तर पर ही नागरिकों को कचरा पृथक्करण की प्रक्रिया में शामिल करना और यह सुनिश्चित करना होगा कि यह पृथक्कृत सूखा और गीला कचरा खाद बनाने और पुनर्चक्रण योग्य हो, जिसे अलग-अलग रूप में जमा कर पृथक् रूप से प्रसंस्करण के लिए भेजा जाए।

आसान तरीका यही है कि उसे इकट्ठा कर फेंक दिया जाए। या इस पर विश्वास कीजिए कि अपृथक्कृत कचरा जलाया भी जा सकता है, जिसे प्रसंस्करण संयंत्र पर मशीनी रूप से अलग भी किया जा सकता है। शहरी स्थानीय निकाय संस्थाओं के अधिकारियों को यह भरोसा दिलाया गया है कि यह जादुई गोली है। इकट्ठा करो, अलग करो और जला दो। मगर

अखिल भारतीय अनुभव (और शेष विश्व से मिले सबक) दर्शाते हैं कि अगर कचरा अपृथक्कृत है तो बनाने वाले ईंधन की गुणवत्ता भी खराब होगी। यह कारगर नहीं होगा।

ऐसे में स्थानीय निकायों को अपने ठोस कचरा प्रबंधन तंत्र के मूल में स्रोत पर पृथक्करण प्रणाली के लिए गुंजाइश निश्चित रूप से बनानी चाहिए। पृथक्करण को वास्तविक रूप में अपनाने वाला पणजी इकलौता शहर है। स्थानीय निकाय अधिकारियों ने समूचे शहर में ऐसा तंत्र सुनिश्चित किया है, जो विभिन्न कचरा धाराओं से अलग-अलग दिनों में घरों से कचरा इकट्ठा करता है, यह पृथक्करण को सुनिश्चित करता है। यह व्यवस्था गैर-पृथक्करण कचरे की स्थिति में हर्जाने के साथ लागू की गई है और इसमें कॉलोनी स्तर पर प्रसंस्करण को भी प्रोत्साहित किया जा रहा है। इससे भी महत्वपूर्ण होटल और अन्य बड़े व्यावसायिक प्रतिष्ठानों के लिए इसमें अलग प्रणाली बनाई गई है ताकि किसी भी तरह की गलती को पकड़कर उस पर जुर्माना लगाया जा सके।

केरल के एलेप्पी में पृथक्करण अलग तरह से किया जाता है। यहां स्थानीय निकाय संस्था कचरा इकट्ठा नहीं करती क्योंकि उसके निपटान के लिए उसके पास जगह ही नहीं है। उसकी इकलौती जमीन के पास रहने वाले ग्रामीणों ने उसकी नाकाबंदी कर दी है। कचरा प्रबंधन में स्थानीय निकाय संस्था के हाथ खींचने का यही अर्थ है कि लोगों को अपने कचरे का खुद प्रबंधन करना होगा या फिर वे उसमें सड़ते रहें। वे खुद पृथक्कृत करते हैं और उसकी खाद बनाते हैं। खाद सब्जियां उगाने और उनके खेतों में फसल के लिए इस्तेमाल होती है। समस्या यही है कि कागज, प्लास्टिक, एल्युमीनियम टिन इत्यादि अजैविक कचरे का समाधान कैसे तलाश जाए। इसी मोर्चे पर सरकार ने हस्तक्षेप किया है। यह पहले से ही सुगठित अनौपचारिक कचरा-पुनर्चक्रण क्षेत्र के जरिये कचरा संग्रहण को प्रोत्साहन देती है। इस प्रकार स्थानीय निकाय संस्था का भारी पूंजीगत खर्च बच जाता है अन्यथा उसे कचरा इकट्ठा करने और उसकी ढुलाई पर खासा खर्च करना पड़ता।

मगर यह तो कचरा निपटान समाधान का महज एक पहलू भर है। दूसरा पहलू यही है अपृथक्कृत कचरे के लिए कोई जगह ही नहीं होनी चाहिए। इसका अर्थ यही है कि शहरों में जमीन पर पसरे कचरे को लेकर सख्त कदम उठाने होंगे। वास्तव में एमएसडब्ल्यू (प्रारूप) नियम 2015 में उल्लेख है कि जमीन का इस्तेमाल केवल अवशिष्ट कचरे के लिए किया जाना

चाहिए। इसमें इस बात पर भी जोर है कि जमीन पर जरा भी कचरा न पसरे और इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए कचरे के पुनर्चक्रण या पुनः उपयोग के पूरे प्रयास किए जाएंगे। यह पूर्ववर्ती नीतियों से एक महत्वपूर्ण अलग रुख है, जिसमें जमीन की सफाई की जरूरत पर जोर था।

सवाल यही है कि इस नीति को कैसे लागू किया जा सकता है। फिलहाल शहरों में स्थानीय निकाय द्वारा कचरा प्रबंधन के सभी ठेके इस आधार पर दिए जाते हैं कि निजी ठेकेदार कचरा स्थल पर कितनी भारी तादाद में कचरा ला सकता है। इसमें कचरा स्थल पर कचरा गिराने की तादाद के अनुपात में ही ठेकेदार को भुगतान किया जाता है। इसका अर्थ यही है कि जितना ज्यादा कचरा आएगा, उतना ही ज्यादा वित्तीय फायदा होगा। साथ ही शहरी स्थानीय निकाय संस्थाओं को कचरे के पुनः उपयोग के झमेले में फंसने के बजाय उसके इकट्ठा कर ढुलाई से कचरा स्थल पर पहुंचाना ज्यादा आसान लगता है।

इसमें बदलाव के लिए जरूरी है कि कचरे से जगह घेरने पर कर लगा दिया जाए, अनुबंधों को फिर से तैयार करने की जरूरत है ताकि कचरा स्थल पर कचरा पहुंचाने के एवज में स्थानीय निकाय द्वारा भुगतान के बजाय ठेकेदार को कचरा निपटान के लिए बखशीश देनी चाहिए। इस प्रकार कचरा स्थल पर कचरा लाने के एवज में भुगतान के बजाय ठेकेदार या शहरी स्थानीय निकाय को कचरा निपटान के लिए बखशीश अदा करनी होगी। इससे कचरा प्रसंस्करण उद्योग वित्तीय रूप से अधिक व्यावहारिक होगा और सुनिश्चित करेगा कि कचरा स्थल तक कम से कम कचरा पहुंचे। हमें शीर्ष स्तर पर कचरा प्रबंधन तंत्र प्रणाली में बदलाव की जरूरत है। केवल उसी तरह हम अपने शहरों को साफ रख सकते हैं, न कि चादर के नीचे सिर्फ झाड़ पोंछकर।



दैनिक भास्कर

नेपाल से रिश्तों में खटास हमारी खामियों का नतीजा

इसमें कोई दो राय नहीं कि हाल में भारत और नेपाल के राजनयिक रिश्तों को जो झटका लगा है उसके पीछे नेपाल की आंतरिक राजनीतिक अस्थिरता एक बड़ा कारण है, लेकिन इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता कि भारत अगर नेपाल से अपने समसामयिक रिश्तों को धार्मिक आधार पर मजबूत करना चाहता है तो वह संभव नहीं है। नेपाल ने पहले अपनी राष्ट्रपति विद्यादेवी भंडारी का अक्षय तृतीया पर सिंहस्थ स्नान और 21 मई को बुद्धपूर्णिमा पर लुंबिनी में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के साथ उपस्थिति को रद्द किया और बाद में जिस तरह से भारत में अपने राजदूत दीप कुमार उपाध्याय को भारत के साथ मिलकर केपी शर्मा ओली की सरकार गिराने का षड्यंत्र रचने का आरोप लगाकर बर्खास्त किया, वह एक असाधारण राजनयिक झटका है। उसके बाद चर्चा इस बात की भी रही कि ओली सरकार नेपाल में तैनात भारतीय राजदूत रंजीत राय को भी हटाने पर विचार कर रही है। हालांकि, नेपाल के उप-प्रधानमंत्री और विदेश मंत्री कमल थापा ने इसका खंडन किया है, लेकिन यह सब राजनयिक झटका देने के बाद की लीपापोती है।

केपी शर्मा ओली की सरकार से प्रचंड ने समर्थन वापस लेने का फैसला लगभग कर ही लिया था, लेकिन ओली ने ऐसी सौदेबाजी की कि वह योजना टल गई और उल्टे उसका निशाना भारत की ओर मोड़ दिया। इस झटके का राजनयिक संदेश अगर भारत सरकार ने अब तक न समझा हो तो हैरानी की बात है। नेपाल में दरअसल अभी सीपीएन (यूएमएल) पार्टी के प्रधानमंत्री हैं और उनके बाद अगर नेपाली कांग्रेस को मौका नहीं मिला तो माओवादी पार्टी के प्रचंड अपने सत्तारोहण की तैयारी कर रहे हैं। प्रचंड भले ही भारत को यह झांसा दे रहे हों कि वे उसके करीब हैं और ओली की सरकार गिरा देंगे, लेकिन

ऐन मौके पर ओली ने जिस प्रकार माओवादियों को माफी देकर और भारत पर तोहमत लगाकर राजनीति खेली है, उसे हमें समझना होगा। हम पाकिस्तान और मालदीव की तरह ही नेपाल से रिश्ता बनाने में गड़बड़ा रहे हैं। यह गड़बड़ी पहले यूपीए सरकार कर रही थी और एनडीए सरकार से भी जिस व्यावहारिक धरातल की उम्मीद थी उसे वह चिह्नित नहीं कर पा रही है। यह कहना आसान है कि नेपाल पर चीन का असर बढ़ रहा है और नेपाल की आंतरिक समस्याएं ऐसा करवा रही हैं, लेकिन यह कहने से काम चलने वाला नहीं है। जरूरत इस बात की है भारत नेपाल की राजनीतिक स्थितियों को समझे और उस पर समय के अनुरूप व्यावहारिक कार्रवाई करे।



THE TIMES OF INDIA

Revoke this life sentence: To give the urban poor a leg up, arrest the catastrophe unfolding in municipal schools

John Kurrien

The quality of education imparted in our urban municipal elementary schools is abysmal. Unless standards of instruction and learning are significantly enhanced, life chances of children of the urban lower middle class and poor, who attend these schools, will continue to be bleak.

An Educational Initiatives study of 35,000 Class 2, 4 and 6 students in 300 municipal schools in 30 towns of 5 states, indicated that more than two-thirds of Class 4 children were unable to divide 20 by 5. More than half of Class 2 students could not match an alphabet letter with its sound – a skill mastered by most children attending an average private pre-primary school.

Instruction in most municipal schools is also extremely limited in quality and scope. Apart from mindless teaching of languages and mathematics from prescribed textbooks, and a smattering of science and social studies, little is done by way of art and craft and extracurricular activities.

It is therefore not surprising that municipal schools have witnessed a dramatic decrease in enrolment in the last 3 decades, despite providing their students with free textbooks, midday meals and other student entitlements. Private school enrolment has increased, and almost two-thirds of all our elementary school-going children in urban India are now enrolled in private schools.

What needs to be done? First and foremost, we must ensure that most children acquire basic reading, writing and mathematics skills, with a focus on providing a strong foundation in Classes 1 and 2. Since the vast majority of older students in Classes 3-8 are also woefully deficient in these skills, an extensive and continuous programme of remedial education is equally important.

Since most municipal schools teach in the regional languages, critical to their very survival is a special focus on the acquisition of basic proficiency in English. Unless this is done, many parents will continue to opt for private, low cost English medium options. Finally, municipal schools must actually try to educate children by providing a rich curriculum, including extracurricular activities and sports, as visualised in the 2005 National Curriculum Framework.

None of these changes can be implemented unless municipal shift schools become full-time schools. Municipal school students attend morning or afternoon shift schools, with two or more of these schools occupying the same building. Consequently, they receive far less actual instructional time than students attending neighbouring full-time private schools, or rural government schools in the same state.

Due to both legitimate and illegitimate reasons, even the 3-4 hours of daily instruction time received by students in municipal shift schools is a gross overestimate. This limited instructional time – an institutionalised inequality – also blatantly violates the RTE Act norms of 800 hours of instruction for Classes 1-5 and 1,000 hours for Classes 6-8.

One more reform needs to be undertaken. Since most municipal schools do not have secondary sections (Classes 9-10), anxious parents either opt for private schools in Class 1 or withdraw their children later before completing Class 8. According to Nalini Juneja of NUEPA, it is the growing parental aspirations for their children acquiring a secondary school certificate that may also be contributing to the precipitous decline in municipal school enrolment.

The municipal school of the future should therefore be a full-time composite school from kindergarten to Class 10. The limited instructional hours of currently functioning municipal shift schools cannot improve foundational skills in languages and mathematics, nor provide systematic remedial education and also accommodate other curricular and extracurricular activities.

Without full-time schooling, good quality education is not even remotely possible. This is why well-intentioned and ambitious efforts like the revamping of Delhi government elementary shift schools by the Aam Aadmi Party to make them better than private schools, is merely wishful thinking.

Full-time composite municipal schools would also be needed if India is to meet its commitment that all its children will complete secondary education by 2030 – one of the 17 Global Goals of the Sustainable Development Agenda. By 2031, 600 million people or 40% of the population will live in urban India. Without political will and an exponential increase in human and financial resources, we will be unable to implement this commitment to providing quality secondary education for all.

Merely implementing some limited ad hoc school expansion and pedagogic improvements would condemn many lower middle class and poor parents to choose between sentencing their children to life in free municipal schools, or to make extraordinary sacrifices to enroll them in low fee charging private schools. Unfortunately, many of the latter are merely substandard teaching shops.

Compelling urban parents to choose between these two extremely undesirable options reflects the dismal failure of the state to provide free quality education in accordance with the RTE Act. Only free and full-time good quality municipal schools with preprimary and secondary sections will reverse the significant outward migration of students to private schools, and also improve their life chances.

Mere tinkering at improving an unjust, legally and pedagogically indefensible system of municipal elementary schools run in part-time shifts will neither contribute to social mobility and inclusive growth, nor prevent its continuing rapid deterioration and eventual extinction.

THE ECONOMIC TIMES

Why industry must take initiative to end vilification

Stop vilifying India Inc, cries Assocham, in the wake of public angst over mounting bad loans and belligerent wilful defaulters. Assocham has a point. However, it is no use playing victim. The real challenge is to accept the systemic nature of the problem and work for change. It most certainly is not the case that all promoters and industry in general are parasites living off the

fat of the land through crony connections with the powers that be. Nor are they blameless babes in the woods.

The reality is that most projects have inflated costs, which make for larger-than-warranted debt and erode the viability of the project from the word go. Why are project costs routinely inflated? Because they need to be and because they can be. They need to be because the cost of obtaining all clearances, removing administrative roadblocks and securing the protection of the state against sabotage by rivals, criminals and vandals is at least a quarter of the project itself. The bulk of this excess amount is handed over to politicians, who use the proceeds ostensibly to finance politics but also to build their own personal fortunes. If the project developer has to pony up this amount, he has to inflate costs to take out money from the project. Once project costs are inflated, the temptation is high to inflate them a bit more so that the promoter too can enrich himself from the project's implementation. Banks oblige with excessive credit because, one, their politicalbureaucratic masters have told them to. Two, other banks finance similar projects with similar debt loading. And three, some bankers get a share of what is siphoned off in this manner.

It is high time these sordid truths got discussed in polite company. Political funding has to become transparent. Infrastructure projects must be funded by the bond market, so that multiple agencies vet their costs and viability and not just a closed group of bankers. Banks must be insulated from neta-babu interference. Bankers' pay must go up significantly but get linked to the quality of the assets they originate. Do this, to end vilification.